THE ECONOMIC TIMES

Date: 30-09-24

In Pursuit Of Death

Draft guidelines advance the rights of terminally ill patients on life support. Reality is painfully behind

ET Editorials

While healthcare reach in India leaves a lot to be desired, there is no doubt that everyday more persons have access to life-sustaining treatments than yesterday. But this also means that everyday there are more patients on life support who are "not expected to benefit" from it. While recent years have seen courts and govt recognise such terminally ill patients' right to die with dignity, the actual processes to access this right are so gruelling that it largely remains out of reach. The draft GOI guidelines for withdrawal of life support in terminally ill patients, released for public comment, are intended to increase access to this right. Will they?

In a recent case, both Delhi HC and the Supreme Court turned down the plea of aging parents of a patient who has been in a "permanently vegetative state" for more than a decade, to direct the constitution of a medical board to assess him for passive euthanasia. The courts' logic was that the patient "does not appear to be on life support". Experts have since pointed out, including on this page, that the courts' reading of the Ryles tube, inserted into the patient's stomach through his nose, is neither the consensus medical opinion nor the legal position in most jurisdictions around the world.

A useful clarification provided by the draft guidelines is that "parenteral nutrition" – nutrients pumped directly into a vein – is in the same category as mechanical ventilation. They also underline that the judicial officer is only to be notified – of a decision made by medical professionals in consultation with the family/surrogate and valid Advance Medical Directives. "Approval is not required." This should help medical boards get over fears of courts. But the medical boards need to exist in the first place. Then they need to step up. Act with gravity, empathy and science.

दैनिक जागरण

Date: 30-09-24

एक साथ चुनाव का बेतुका विरोध

सुरेंद्र किशोर , (लेखक राजनीतिक विश्लेषक एवं वरिष्ठ स्तंभकार हैं)

संविधान निर्माताओं को इस देश के मतदाताओं के विवेक पर पूरा भरोसा था। उन्हें यह अनुभूति थी कि मतदाता राष्ट्रीय हितों के साथ ही अपने राज्य के हितों का भी ध्यान रख सकते हैं। इसीलिए संविधान में 'एक राष्ट्र और अलग-अलग चुनाव' जैसी कोई व्यवस्था नहीं की, क्योंकि एक साथ चुनाव से उन्हें संघवाद पर कोई खतरा नजर नहीं आया। कुछ समय तक एक साथ चुनाव का सिलसिला भी सुगमता से चला, लेकिन इतिहास गवाह है कि 1971 में अलग चुनाव कराने का इंदिरा गांधी का फैसला देशहित में न होकर अपने स्वार्थ से जुड़ा था। उसमें सुधार अब समय की जरूरत है। संविधान निर्माता जानते थे कि देश के मतदातागण इतने विवेकशील हैं कि वे एक ही चुनाव के समय लोकसभा के लिए एक पार्टी और उसी चुनाव में विधानसभा के लिए दूसरी पार्टी को वोट दे सकते हैं। स्वतंत्रता सेनानी एवं पूर्व उप-प्रधानमंत्री जगजीवन राम कहा करते थे कि 'तमाम भारतीय मतदाता भले निरक्षर हैं, पर वे बेवकूफ नहीं हैं।'

वर्ष 1957 के चुनाव में केंद्र में जहां कांग्रेस सरकार कायम रही, वहीं केरल में पहली बार गैर-कांग्रेसी कम्युनिस्ट सरकार बनी। यह सिलसिला समय के साथ और तेज हुआ। वर्ष 1967 आखिरी ऐसा अवसर था जब केंद्र और राज्यों के चुनाव एक साथ हुए थे। तब केरल सहित सात राज्यों के विधानसभा चुनावों में गैर-कांग्रेसी सरकारें बनीं, जिनमें से एक राज्य बिहार भी था। तब बिहार में लोकसभा की 53 सीटें थीं। उनमें से 34 सीटें यानी आधी से अधिक कांग्रेस को मिली थीं, मगर विधानसभा चुनाव में उसे बहुमत नहीं मिल सका। यानी बिहार की जनता ने लोकसभा के लिए तो कांग्रेस को वोट दिए, लेकिन विधानसभा चुनाव में गैर-कांग्रेसी सरकार चुनी। तब क्या किसी ने संघीय ढांचे के कमजोर होने का शोर मचाया था।

ऐसे में, यदि एक बार फिर देश में लोकसभा और विधानसभाओं के चुनाव साथ होने लगें तो उसमें किसी को भला क्यों परेशानी होनी चाहिए, क्योंकि 1967 के बाद तो देश में साक्षरता से लेकर संचार के साधनों का काफी विस्तार हुआ है। लोगों में जागरूकता बढ़ी है। आज राजग विरोधी दल और उनके नेता यह आरोप लगा रहे हैं कि एक साथ चुनाव कराने पर केंद्र में सत्तासीन राष्ट्रीय दल और उसके शीर्ष नेता में एकाधिकारवाद की प्रवृत्ति पनपने का खतरा बढ़ेगा। वर्ष 1967 और 1971 के चुनावों के बाद के राजनीतिक विकास की जिन्हें गहरी जानकारी है, वे ऐसी बेतुकी दलील कतई नहीं देंगे। जब 1967 में लोकसभा के साथ ही विधानसभा चुनाव हुए तब इंदिरा गांधी ही प्रधानमंत्री थीं। उस चुनाव के बाद भी इंदिरा गांधी ही प्रधानमंत्री बनीं, लेकिन उनमें 1967 से 1971 तक एकाधिकारवाद की प्रवृत्ति नहीं बढ़ी थी, क्योंकि तब तक कांग्रेस पार्टी में ही एक हद तक आंतरिक लोकतंत्र कायम था। इंदिरा सरकार 1969 से 1971 तक अपने अस्तित्व के लिए दूसरे दलों पर भी निर्भर थी। यहां तक कि इंदिरा गांधी 1967 के चुनाव में पूर्व रक्षा मंत्री वीके कृष्ण मेनन तक को लोकसभा का टिकट नहीं दिलवा सकीं। जबकि वह 1962 के चुनाव में बंबई (अब मुंबई) की एक लोकसभा सीट से जीतकर आए थे। तब कांग्रेस संगठन मेनन के खिलाफ था।

हालांकि 1971 के चुनाव में इंदिरा गांधी भारी बहुमत से जीतकर आईं तो उनमें एकाधिकारवाद की प्रवृत्ति काफी बढ़ गई। यह प्रवृत्ति इतनी बढ़ी कि सक्रिय राजनीति से संन्यास ले चुके जयप्रकाश नारायण को भी लग गया कि यह देशहित में नहीं है। उन्होंने इंदिरा गांधी के एकाधिकारवाद पर एक लंबा लेख लिख दिया।उसी लेख के कारण जेपी से प्रधानमंत्री कुपित रहने लगीं। यह जेपी आंदोलन के शुरू होने से पहले की बात है। इसी पृष्ठभूमि में किसी कार्य से जेपी ने पटना से दिल्ली पहुंचकर जब प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी से मिलने की कोशिश की तो श्रीमती गांधी ने उन्हें कहलवा दिया कि वह सूचना एवं प्रसारण मंत्री इंद्र कुमार गुजराल से मुलाकात कर लें। जेपी गुजराल से मिले बिना पटना लौट गए। अब जो प्रतिपक्षी दल यह आरोप लगा रहे हैं कि एक साथ चुनाव से प्रधानमंत्री में एकाधिकार की प्रवृत्ति बढ़ेगी, तो वे 1971 के

सत्ताधारी दल और आज के सत्ताधारी दल की बनावट एवं प्रवृत्ति में अंतर नहीं देख पा रहे हैं। फिर यदि ऐसी कोई प्रवृत्ति उभरती भी है तो मतदाता उसका जवाब देने में पूरी तरह सक्षम हैं।

एक साथ चुनाव कराने के विरोध में तरह-तरह के तर्क गढ़ने वाली कांग्रेस यह कह रही है कि वह संविधान और लोकतंत्र के खिलाफ होगा। दूसरी ओर वही कांग्रेस बार-बार यह तर्क दोहराती रहती है कि प्रथम प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू ने इस देश में मजबूत लोकतंत्र की नींव डाली। यानी तब एक साथ चुनाव कराने से लोकतंत्र मजबूत होता था, तो आज वही काम करने से वह कमजोर कैसे हो जाएगा? जबकि तब की अपेक्षा आज के भारतीय मतदाता अधिक जागरूक हैं। कांग्रेस के साथ दिक्कत यह है कि फिर से एक साथ चुनाव की व्यवस्था से इंदिरा गांधी के उस विवादास्पद फैसले के औचित्य पर प्रश्न चिह्न लग जाएगा, जिसके तहत उन्होंने 1971 में अलग से लोकसभा का चुनाव कराया था, जिसके पीछे उनका निजी स्वार्थ था। उनकी सरकार सीपीआइ और डीएमके जैसे दलों के सहारे आराम से चल रही थी। उस पर कोई खतरा नहीं था, लेकिन वह इन दलों के दबाव से जल्द मुक्त होना चाहती थीं। सीपीआइ आदि के दबाव के कारण वह न तो खुद एकाधिकारवादी बन पा रही थीं न ही अपने पुत्र संजय गांधी के लिए कार संयंत्र की स्थापना करवा पा रही थीं। संजय गांधी ने लंदन के एक कार कारखाने में कुछ समय तक प्रशिक्षण भी लिया था। संजय की बड़ी इच्छा थी कि वह भारत में कारखाने की स्थापना करें। संजय ने अपने नाना के सिरहाने से हेनरी फोर्ड की किताब निकाल कर पढ़ी थी, जिससे उन्हें इसके लिए प्रेरणा मिली थी। इस बीच 1969 में कांग्रेस के महाविभाजन के बाद इंदिरा गांधी ने गरीबी हटाओ का लुभावना नारा गढ़ने के साथ ही कुछ लोकलुभावन काम भी किए।1971 के चुनाव में जीत के बाद इंदिरा गांधी गरीबी हटाने का अपना वादा तो भूल गईं, लेकिन अपने पुत्र संजय के कारखाने का सपना जरूर पूरा किया। उसके मूल में अलग-अलग चुनाव कराने की जो एक विसंगति आरंभ हुई, उसे दूर करना मौजूदा सरकार का दायित्व है।

Date: 30-09-24

बोझिल नियमों से मुक्त हो विनिर्माण क्षेत्र

डॉ. ब्रजेश कुमार तिवारी, (स्तंभकार जेएनयू के अटल स्कूल आफ मैनेजमेंट में प्रोफेसर एवं 'मेक इन इंडिया-ए रोडमैप' के लेखक हैं)

मेक इन इंडिया मोदी सरकार की एक प्रमुख योजना है। 25 सितंबर, 2014 को शुरू हुई यह योजना दस वर्ष पूरे कर चुकी है। इस अभियान के कुछ घोषित लक्ष्य थे, जैसे विनिर्माण क्षेत्र की विकास दर 12-14 प्रतिशत प्रति वर्ष करते हुए 2022 तक सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) में विनिर्माण के योगदान को 25 प्रतिशत तक बढ़ाना और 2022 तक अर्थव्यवस्था में विनिर्माण क्षेत्र की 10 करोड़ अतिरिक्त नौकरियां पैदा करना। अब इन लक्ष्यों को 2025 तक बढ़ा दिया गया है। हालांकि मौजूदा गति और बुनियादी ढांचे की कमी के कारण यह महत्वाकांक्षी लक्ष्य 2030 तक भी पूरा होता नहीं दिख रहा है। कोविड महामारी के दौरान यह प्रचारित किया गया कि चीन छोड़ने वाली कंपनियां भारत में आएंगी, लेकिन इनमें से अधिकांश ने वियतनाम, ताइवान एवं थाइलैंड की राह पकड़ी और केवल कुछ ही भारत आईं।

यह सच है कि सरकार निरंतर आर्थिक विकास करने और अंतरराष्ट्रीय व्यापार में प्रासंगिकता बढ़ाने के लिए एक प्रतिस्पर्धी और गतिशील वातावरण बनाने का प्रयास कर रही है और इसके अच्छे परिणाम भी कुछ क्षेत्रों में दिख रहे हैं।

भारतीय कंपनियों द्वारा कोविड टीकों का विकास एक बड़ा उदाहरण है। सरकार के प्रयासों के कारण 2014-2023 के दौरान विनिर्माण क्षेत्र में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश बढ़ा है।परंपरागत रूप से खिलौनों का आयातक रहा भारत अब निर्यातक बन गया है। अप्रैल-अगस्त 2022 में भारत के खिलौना निर्यात में 2013 की समान अवधि की तुलना में 636 प्रतिशत की वृद्धि हुई। इसी तरह मोबाइल उत्पादन 2014-15 में 18,900 करोड़ रुपये से बढ़कर वित्त वर्ष 2024 में 4,10,000 करोड़ रुपये के अनुमानित बाजार तक पहुंच गया।एयरोस्पेस, नवीकरणीय ऊर्जा जैसे अन्य क्षेत्रों में भी प्रगति हो रही है। आइबीईएफ की रिपोर्ट के अनुसार 2023 में विनिर्माण क्षेत्र ने अब तक का सबसे अधिक निर्यात किया, जो 447.46 अरब डालर तक पहुंच गया है। विश्व बैंक द्वारा जारी ईज आफ डूइंग बिजनेस इंडेक्स में 2014 में भारत की रैंक 134वीं थी, जो 2023 में बढ़कर 63 हो गई।वैश्विक प्रतिस्पर्धात्मकता रिपोर्ट इंडेक्स में भारत 43वें स्थान पर है, जो 2014 में 60वें स्थान पर था। इसके बावजूद मैन्यूफैक्चरिंग में संभावनाएं पूरी तरह साकार नहीं हो पा रहीं। इसे अनदेखा नहीं किया जा सकता कि हाल के वर्षों में जनरल मोटर्स, मैन ट्रक्स, यूनाइटेड मोटर्स, फिएट और हार्ले डेविडसन ने भारतीय बाजार से निकलने का फैसला किया। फेडरेशन आफ आटोमोबाइल डीलर्स एसोसिएशन के अनुसार इन निकासियों के चलते 65,000 नौकरियां चली गईं। एक कंपनी के बंद होने से हजारों श्रमिकों का विस्थापन होता है।

हम चीन से तुलना करना पसंद करते हैं। उसकी जीडीपी में मैन्यूफैक्चरिंग की हिस्सेदारी 34 प्रतिशत है। भारत की तुलना में जीडीपी में विनिर्माण का बड़ा हिस्सा रखने वाले अन्य एशियाई देशों में दक्षिण कोरिया (26 प्रतिशत), जापान (21 प्रतिशत), थाइलैंड (27 प्रतिशत), सिंगापुर और मलेशिया (21 प्रतिशत), इंडोनेशिया और फिलीपींस (19 प्रतिशत) शामिल हैं। चीन ने खुद को दुनिया के कारखाने के रूप में स्थापित किया है और वैश्विक विनिर्माण में उसका हिस्सा 22.4 प्रतिशत है, जबकि पांचवीं सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था होने के बावजूद भारत वैश्विक विनिर्माण में बमुश्किल 2.9 प्रतिशत योगदान देता है।चीन से आयात छोटे उद्यमों को बड़ा नुकसान पहुंचा रहा है, क्योंकि सस्ते चीनी सामान के कारण घरेलू कंपनियों के लिए बाजार में प्रतिस्पर्धा कठिन हो रही है। ग्लोबल ट्रेड रिसर्च इनिशिएटिव के अनुसार कई आयातित उत्पाद स्थानीय एमएसएमई द्वारा बनाए जाते हैं और कम लागत वाले चीनी उत्पादों तक आसान पहुंच के कारण उन्हें मुश्किलों का सामना करना पड़ता है।उदाहरण के लिए चीन भारत के 96 प्रतिशत छाते, 92 प्रतिशत कृत्रिम फूल और मानव बालों से बनी वस्तुओं की आपूर्ति करता है। चीनी आयात ने कांच के सामान में 60, सिरेमिक उत्पादों में 51.4 और संगीत वाद्ययंत्रों में 52, फर्नीचर, बिस्तर और लैंप में 48.7 प्रतिशत, औजार और कटलरी में 39.4 प्रतिशत, पत्थर, प्लास्टर और सीमेंट में 49.3 प्रतिशत, चमड़े की वस्तुओं के बाजार के 54 प्रतिशत तक पर कब्जा कर लिया है।सरकार द्वारा खिलौनों पर सीमा शुल्क 20 प्रतिशत से बढ़ाकर 70 प्रतिशत करने के बावजूद भारतीय खिलौना बाजार में चीन का 35 प्रतिशत हिस्सा है। इस स्थिति के बारे में विचार किया जाना चाहिए।

हाल में विनिर्माण को बढ़ावा देने के लिए सरकार ने कुछ कदम उठाए हैं, लेकिन अभी वांछित नतीजे नहीं मिल सके हैं।पिछले एक दशक में देश में स्टार्टअप की संख्या 350 से 1.48 लाख हो गई, पर आज भी 80 प्रतिशत स्टार्टअप फेल हो रहे हैं। हमें शिक्षा, प्रशिक्षण और आजीवन सीखने के कार्यक्रमों के माध्यम से कार्यबल के कौशल और क्षमताओं को बढ़ाना होगा, जो उद्योगों की जरूरतों और मांगों से मेल खा सके।

भारत में एमएसएमई क्षेत्र का विनिर्माण उत्पादन में 45 प्रतिशत से अधिक योगदान है। वैश्विक अर्थव्यवस्था के साथ एमएसएमई को अधिक कनेक्टिविटी की आवश्यकता है।निर्यात बढ़ाने के लिए पीएलआई योजना को एमएसएमई और उभरते उद्योगों तक बढ़ाया जाना चाहिए। भारत भविष्य में खुद को अगला वैश्विक कारखाना बना सकता है, बशर्ते

बोझिल नियमों से विनिर्माण क्षेत्र को मुक्त किया जाए। सरकार को यह समझने की जरूरत है कि संसद के माध्यम से कोई विधेयक पारित करना, निवेशक सम्मेलन आयोजित करना आदि औद्योगीकरण को बढ़ावा देने के लिए पर्याप्त नहीं।

जनसत्ता

Date: 30-09-24

इजराइल का निशाना

संपादकीय

इजराइल अब हमास और हिजबुल्ला के प्रमुखों का इजराइल ने कर दिया सफाया, अब दोनों के खिलाफ लड़ेगा आरपार की लड़ाई अभी तक ईरान इस संघर्ष में नरम रुख अख्तियार किए हुए था, पर अब उस पर दबाव बढ़ेगा। हालांकि अप्रैल में इजराइल ने ईरान पर भी हमले किए थे, जिसके जवाब में ईरान ने इजराइल पर गोले दागे थे। पर, उसके बाद वह संघर्ष आगे नहीं बढ़ पाया था। इजराइल अब हमास और हिजबुल्ला के खिलाफ आरपार की लड़ाई में जुट गया है। हमास के प्रमुख को उसने कुछ दिनों पहले मार गिराया था। अब उसके हवाई हमले में हिजबुल्ला के प्रमुख हसन नसरल्लाह के मारे जाने की पुष्टि हो गई है। शुक्रवार को इजराइल ने लेबनान की राजधानी बेरूत में निशाने बना कर हिजबुल्ला के ठिकारों पर हमले किए। उसमें हिजबुल्ला के मुख्यालय पर बंकरभेदी बम गिराए गए, जिसमें नसरल्लाह मारा गया। इसे इजराइल की बड़ी कामयाबी माना जा रहा है। अब भी इजराल हिजबुल्ला को पूरी तरह खत्म करने पर अड़ा हुआ है। पिछले हफ्ते अमेरिका और ब्रिटेन आदि इजराइल के समर्थक पश्चिमी देशों ने कोशिश की थी कि इक्कीस दिनों के लिए इजराइल हमले रोक दे। मगर राष्ट्रपति बेजामिन नेतन्याहू ने उस प्रस्ताव को सीधे-सीधे ठुकरा दिया और कहा कि जब तक वह हिजबुल्ला को खत्म नहीं कर लेगा, तब तक हमले बंद नहीं करेगा। वह संकल्प उन्होंने संयुक्त राष्ट्र के मंच से भी दोहरा दिया। नसरल्लाह के मारे जाने के बाद माना जा रहा है कि मध्यपूर्व में स्थितियां गंभीर हो सकती हैं। ईरान ने आपातकालीन बैठक बुला ली। अगर वह सीधे इस संघर्ष में कूदता है, तो सचमुच युद्ध खतरनाक रूप ले सकता है।

अभी तक ईरान इस संघर्ष में नरम रुख अख्तियार किए हुए था, पर अब उस पर दबाव बढ़ेगा। हालांकि अप्रैल में इजराइल ने ईरान पर भी हमले किए थे, जिसके जवाब में ईरान ने इजराइल पर गोले दागे थे। पर, उसके बाद वह संघर्ष आगे नहीं बढ़ पाया था। ईरान के इस संघर्ष में कूदने से बाकी अरब देशों पर भी अपनी स्थिति स्पष्ट करने का दबाव बनेगा। पेजर और रेडियो बम धमाके करके इजराइल ने पहले ही हिजबुल्ला के सैकड़ों लड़ाकों को मार और अशक्त बना कर उसकी कमर तोड़ दी थी। अब उसके प्रमुख नसरल्लाह के मारे जाने के बाद कई लोगों का मानना है कि हिजबुल्ला खत्म हो जाएगा।इजराइल ने भी दावा किया है कि हिजबुल्ला के हर लड़ाके पर उसकी नजर है। मगर सच्चाई यह है कि हिजबुल्ला इस हमले से कुछ हतोत्साहित जरूर हुआ है, उसकी ताकत शायद कम नहीं हुई है। अब भी उसके पास लाखों

घातक हथियार जमा हैं, जिनका इस्तेमाल वह इजराइल के खिलाफ कर सकता है। इसलिए इजराइल का ज्यादा ध्यान हिजबुल्ला के हथियारों का जखीरा नष्ट करने पर है। हालांकि युद्ध में जीत का सेहरा चाहे जिसके सिर बंधे, नुकसान दोनों पक्षों के आम लोगों को झेलना पड़ता है।

मगर पिछले कुछ वर्षों से यह स्पष्ट है कि युद्ध की स्थितियों को टालने में जैसी भूमिका संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद की होनी चाहिए, वह बिल्कुल नहीं दिखी है। उधर रूस-यूक्रेन संघर्ष जारी है, इधर इजराइल-हमास और हिजबुल्ला का संघर्ष तेज होता जा रहा है।

कोरोनाकाल के बाद से पूरी दुनिया आर्थिक संकटों का सामना कर रही है। आपूर्ति शृंखलाएं बाधित हैं। ऐसे में कुछ देशों की नाहक जिद और सनक की वजह से स्थितियां और चुनौतीपूर्ण हो रही हैं। मगर अमेरिका, ब्रिटेन आदि सुरक्षा परिषद में दबदबा रखने वाले देश अपने निजी स्वार्थों और आर्थिक समीकरणों के तहत चुप्पी साधे हुए हैं। पहले गाजा पट्टी में इजराइल ने हजारों बेकसूर लोगों को मार डाला, लाखों घर ध्वस्त कर दिए, अब वही काम लेबनान में कर रहा है। वहां के आम लोगों की जिंदगी सांसत में है। आखिर उसे मानवता का तकाजा कौन याद दिलाएगा।

Date: 30-09-24

बदलता रुख

संपादकीय

मालदीव के राष्ट्रपति मोहम्मद मुइज्जू ने जिस तरह अब भारत के प्रति अपना नरम रुख जाहिर किया है, वह दोनों देशों के कूटनीतिक संबंधों और अन्य हितों के लिहाज से बेहतर है। संयुक्त राष्ट्र महासभा की बैठक में शामिल होने अमेरिका पहुंचे मुइज्जू ने प्रिंसटन विश्वविद्यालय में आयोजित एक कार्यक्रम के दौरान कहा कि हम किसी भी समय, किसी भी देश के खिलाफ कभी नहीं रहे। यह भारत को बाहर करना नहीं था। उन्होंने भारतीय प्रधानमंत्री के बारे में आपत्तिजनक टिप्पणी करने वाले मंत्रियों के खिलाफ कार्रवाई का भी हवाला दिया। उनका यह भी कहना था कि दरअसल, मालदीव के लोगों को विदेशी सेना की उपस्थिति से गंभीर समस्या का सामना करना पड़ रहा था। इस मसले पर मालदीव में लोगों की राय के अपने आधार हो सकते हैं, लेकिन क्या यह मुद्दा भारत के खिलाफ धारणा बनाने और जनता को अपने पक्ष में लाने का जरिया बनाने का वाजिब कारण हो सकता है? ज्यादा वक्त नहीं बीता है, जब पिछले वर्ष मालदीव में हुए चुनाव में मुइज्जू ने अपने पक्ष में जनसमर्थन जुटाने के लिए 'इंडिया आउट' यानी 'भारत बाहर जाओ' का नारा दिया था और जीत भी हासिल की थी। यही नहीं, राष्ट्रपति बनते ही मुइज्जू ने सबसे पहले भारत सरकार से मालदीव में मौजूद अपने सैनिकों को हटाने के लिए भी कहा था।

चूंकि उन्हें चीन के प्रति झुकाव रखने वाला माना जाता रहा है, इसलिए उनका भारत के प्रति ऐसा आग्रह रखने को एक स्वाभाविक प्रतिक्रिया के तौर पर देखा गया। मगर भू-राजनीति के इस दौर में वैश्विक कूटनीति में कब कैसा समीकरण तैयार हो जाए, शक्तियों का केंद्र बदल जाए, कहा नहीं सकता। ऐसे में मुइज्जू ने अगर भारत के प्रति अपने पुराने रुख पर टिके रहने के बजाय अपने तेवर में नरमी लाने की कोशिश की है, तो इसका संदेश समझा जा सकता है। मुइज्जू

जल्दी ही भारत का आधिकारिक दौरा कर सकते हैं। यों भी, पर्यटन या आर्थिक हितों के लिहाज से भारत और मालदीव के बीच संतुलित संबंध रहे हैं। संभव है कि मुइज्जू के नए रुख को उनके पुराने विचारों के आईने में रख कर देखा जाए, लेकिन उनमें आया बदलाव भारत और मालदीव, दोनों के लिए ही अच्छा है।

Date: 30-09-24

प्राकृतिक खेती की और बढ़ते कदम

रवि शंकर

भारत के लोगों ने पिछले कई सालों से पाश्चात्य अंधानुकरण के कारण न केवल अपने जीवन, बल्कि कृषि को भी अंधकारमय बना दिया है। इस मशीनी युग में खाद्यान्न उत्पादन के लिए इस्तेमाल हो रहे रासायनिक खाद और कीटनाशकों से खाद्य सामग्री जहरीली होने लगी है। देश में कृषि को बढ़ावा देने के नाम पर काफी समय से इस्तेमाल हो रहे रसायनों के चलते धरती अब अपनी उर्वरा शक्ति भी खोने लगी है। यह हकीकत है कि बहुराष्ट्रीय कंपनियां भारत की कृषि संस्कृति को तबाह करने पर तुली हुई हैं। हालांकि धरती को रसायनों से मुक्ति दिलाने और देश के नागरिकों को शुद्ध खाद्यान्न उपलब्ध कराने के लिहाज से शून्य लागत में प्राकृतिक खेती एक बड़ा विकल्प बनकर उभर रही है। सरकार भी इस दिशा में तेजी से काम कर रही है। उसका मानना है कि प्राकृतिक खेती से सबसे ज्यादा फायदा देश के अस्सी फीसद छोटे किसानों को होगा। ऐसे छोटे किसान, जिनके पास दो हेक्टेयर से कम भूमि है। इनमें से अधिकांश किसानों का काफी खर्च रासायनिक उर्वरकों पर होता है। अगर किसान प्राकृतिक खेती की तरफ मुड़ेंगे तो उनकी स्थिति और बेहतर होगी।

केंद्र सरकार ने इस वर्ष के बजट में प्राकृतिक खेती को बढ़ावा देने के लिए कई महत्त्वपूर्ण कदम उठाए हैं। उसने एलान किया है कि अगले दो वर्षों में एक करोड़ किसानों को इसके लिए सहायता दी जाएगी और एक हजार 'बायो रिसर्च सेंटर' स्थापित किए जाएंगे। देश के अधिकांश कृषि वैज्ञानिक मानते हैं कि प्राकृतिक खेती में लागत कम होती है, लेकिन पैदावार को लेकर अब भी किसान और कृषि वैज्ञानिकों को संदेह है। गौरतलब है कि आज ज्यादा से ज्यादा उत्पादन के लिए कृषि क्षेत्र में अंधाधुंध रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों का उपयोग किया जा रहा है। इससे शहर से लेकर गांव तक कोई भी क्षेत्र अछूता नहीं है। फलत: आम जनता के साथ-साथ किसानों को भी कई दुष्परिणाम भुगतने पड़ रहे हैं। इससे किसान का खर्च और कर्ज दोनों बढ़ रहा है, क्योंकि किसानों को रासायनिक खाद, कीटनाशक और हाइब्रीड बीज महंगे दाम पर खरीदने पड़ते हैं। कई बार किसान बैंक कर्ज के जाल में फंसने से आत्महत्या तक कर लेते हैं। ऐसी कई घटनाएं सामने आ रही हैं। इतना ही नहीं, रासायनिक खाद और कीटनाशकों के उपयोग से मिट्टी प्रदूषित हो रही है, हानिकारक कीटों की वृद्धि हो रही है। विभिन्न प्रकार के लाभकारी जीवों जैसे-मछली, केंचुआ समेत दूसरे कीट-पतंगों की कमी हो रही है। रासायनिक खाद और कीटनाशक प्रभावित खानपान से कई प्रकार के रोग उत्पन्न हो रहे हैं। इसलिए बदलते वक्त और खेती की लागत ज्यादा होने की वजह से अब किसानों का रुख धीरे-धीरे प्राकृतिक खेती की ओर बढ़ रहा है।

वर्तमान में कृषि क्षेत्र का सकल घरेलू उत्पाद में योगदान 13.6 फीसद है। यह क्षेत्र देश की 60 फीसद आबादी को प्रत्यक्ष तौर पर रोजगार मुहैया कराता है। लेकिन देशभर में किसानों की वर्तमान सामाजिक-आर्थिक स्थिति ठीक नहीं है। उत्पादन और मूल्य प्राप्ति दोनों में अनिश्चितता की वजह से किसान उच्च लागत वाली कृषि के दुश्चक्र में फंस गया है। किसानों की पैदावार का आधा हिस्सा उनके उर्वरक और कीटनाशक में ही चला जाता है। इस तरह किसान आज लाचार और विवश है। वह भ्रमित है। परिस्थितियां उसे लालच की ओर धकेल रही हैं। उसे नहीं मालूम कि उसके लिए सही क्या है?अधिकतर कृषि विशेषज्ञों का मानना है कि रासायनिक खेती की तुलना में प्राकृतिक खेती में फसल की उपज कम होती है, फिर केंद्र सरकार प्राकृतिक खेती के समर्थन में क्यों है। दरअसल, सरकार को प्राकृतिक खेती के जरिए खाद अनुदान, मिट्टी की घटती उर्वरा शक्ति और जल संकट जैसी चुनौतियों से निपटने की उम्मीद है। सरकार का मानना है कि देश के वैज्ञानिक हरित क्रांति और रसायन आधारित कृषि पर अनुसंधान करते रहे हैं और इसी के आधार पर किसान खेती करते आए हैं। उसमें अब बदलाव लाने की जरूरत है, क्योंकि रासायनिक खाद से खेती करने से किसान और देश दोनों को आर्थिक नुकसान हो रहा है। एक अनुमान के मुताबिक हमारे देश में पांच करोड़ टन रासायनिक खादों का आयात होता है, जिसके लिए अनुदान एक लाख करोड़ रुपए है। इससे दोगुने से ज्यादा पैसा बाहर के देशों को रासायनिक उर्वरकों की खरीदारी के लिए जा रहा है।

यह भी कहा जा रहा है कि प्राकृतिक खेती काफी सरल और फायदेमंद है। विशेषज्ञों के अनुसार प्राकृतिक विधि से खेती करने में किसानों को खेती करने के लिए बाहर से कोई भी चीज खरीदने की जरूरत नहीं है। खेती में सही तकनीक के उपयोग से भूमि वातावरण से ही फसलों में पोषक तत्त्वों की जरूरत पूरी की जा सकती है। इस विधि से खेती करने वाले किसानों को बाजार से किसी प्रकार की खाद और कीटनाशक रसायन खरीदने की जरूरत नहीं पड़ती है। फसलों की सिंचाई के लिए पानी और बिजली भी मौजूदा खेती-बाड़ी की तुलना में दस फीसद ही खर्च होती है। सबसे बड़ी बात, इससे पर्यावरण को जरा भी नुकसान नहीं पहुंचता।

कहा जा सकता है कि प्राकृतिक खेती अपनाने से लागत कम हो जाती है। हमारे देश में महाराष्ट्र, गुजरात और कर्नाटक आदि राज्यों में बड़े पैमाने पर किसान इस खेती को अपना चुके हैं। पंजाब में भी कई साल पहले इसकी शुरुआत हो चुकी है। हां, एक दिक्कत जरूर है कि इस तरह की प्राकृतिक खेती वर्ष भर देखभाल मांगती है। शुरू में यह ज्यादा मेहनत भी मांगती है। लेकिन इससे गांव में रोजगार के अवसर बढ़ते है। बेरोजगारी कम होती है। पर दूर शहर में रह कर खेती कराने वाले या अंशकालिक किसानों को थोड़ा मुश्किलों का सामना करना पड़ता है। केवल नौकरी के भरोसे प्राकृतिक खेती करने वाले के लिए उतनी अनुकूल नहीं है, जितनी वर्तमान की रासायनिक खेती।

बहरहाल, प्राकृतिक खेती छोटे और सीमांत किसानों के लिए किसी वरदान से कम नहीं है, क्योंकि फिलहाल खेती के लिए रसायनों आदि की भारी कीमत चुकाने के लिए किसानों को कर्ज लेना पड़ता है और कर्ज का यह बोझ बढ़ता ही जा रहा है। किसान रासायनिक खाद और कीटनाशक के प्रयोग से न केवल कर्ज में डूब रहा है, बल्कि खेतों में जहर की खेती भी कर रहे हैं। अनाज और सब्जियों के माध्यम से यही जहर हमारे शरीर में जाता है, जिससे आज कैंसर जैसी गंभीर बीमारियां लगातार फैल रही हैं। इस तकनीक का इस्तेमाल करने वाला किसान कर्ज के झंझट से भी मुक्त रहता है, वहीं उन्नत कृषि उत्पादों से आम जनजीवन का स्वास्थ्य भी सुरक्षित रहता है। अगर हमें अपने परिवार और समाज को स्वस्थ रखना है, तो हमें प्राकृतिक खेती की ओर लौटना होगा। यह एक बड़ा, लेकिन जरूरी काम है।

राष्ट्रीय सहारा

Date: 30-09-24

भारत को हासिल क्या

गिरीश चंद्र पाण्डे

समय पहले प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी की 21- 23 सितम्बर, 2024 की तीन दिनी अमेरिका यात्रा कई मायनों में महत्त्वपूर्ण रही। उनकी यह यात्रा हिन्द-प्रशांत क्षेत्र में स्थिरता सुनिश्चित करने और वैश्विक व क्षेत्रीय मुद्दों पर विचारों के आदान-प्रदान के वास्ते क्वाड के अन्य सदस्य देशों यानी अमेरिका, जापान तथा ऑस्ट्रेलिया के बीच सहयोग बढ़ाने के तरीकों पर चर्चा करने के साथ ही यूक्रेन और गाजा में संघर्षों का शांतिपूर्ण समाधान खोजने और ग्लोबल साउथ की चिंताओं को दूर करने पर भी केंद्रित थी।

जहां तक विलमिंगटन डेलावेयर में राष्ट्रपति जो बाइडेन द्वारा 21 सितम्बर, 2024 को आयोजित क्वाडिलैटरल सिक्योरिटी डायलॉग 'क्वाड लीडर्स शिखर सम्मेलन में प्राप्त भारत की उपलब्धियों का प्रश्न है, तो प्रधानमंत्री मोदी ने इस मंच से अप्रत्यक्ष तौर पर चीन को संदेश देते हुए कहा कि हम सभी नियम आधारित अंतरराष्ट्रीय व्यवस्था, संप्रभुता एवं क्षेत्रीय अखंडता के सम्मान और सभी मुद्दों के शांतिपूर्ण समाधान का समर्थन करते हैं। हम किसी के खिलाफ नहीं हैं, और भारत विस्तारवाद के स्थान पर विकासवाद का समर्थक है। जब प्रधानमंत्री ने कहा कि आज समुद्र और आसमान, दोनों सुरक्षित नहीं हैं, तो उनका संकेत चीन की तरफ था क्योंकि दक्षिण चीन सागर पर चीन इसलिए कब्जे का प्रयास कर रहा है कि उसमें उसके देश का नाम शामिल है। ऐसे बेहूदे तर्कों के आधार पर जब कोई देश अंतरराष्ट्रीय कानूनों का माखौल उड़ाता है, तो स्वयं तो उपहास का पात्र बनता ही है, साथ में पूरी दुनिया को भी संकट में डालता है। मोदी की यात्रा ने भारत को 14 सदस्यों वाले हिन्द-प्रशांत आर्थिक समृद्धि ढांचे (आईपीईएफ) को और नजदीक लाने में भी सहायता की है। यह पहल क्षेत्र में चीन के बढ़ते प्रभाव से निपटने के लिए अमेरिकी राष्ट्रपति ने 2022 में शुरू की थी।

क्वाड- अमेरिका, भारत, ऑस्ट्रेलिया तथा जापान चार देशों का चौगुट है, जो हिन्द-प्रशांत के भीतर मौजूद समस्याओं से निपटने और क्षेत्र में चीन की बढ़ती आक्रामकता और विस्तारवादी नीति पर लगाम लगाने के लिए बना है। इसीलिए चीन इस संगठन के खिलाफ नाराजगी व्यक्त करता रहता है। आज जबकि कई वैश्विक मंचों की अहमियत नहीं रह गई है, ऐसे में क्वाड लीडर्स के सम्मेलन में क्वाड के प्रति मोदी की प्रतिबद्धता और कहना कि यह संस्था बनी रहेगी, सदस्य देशों के बीच आपसी साझेदारी होगी तथा तालमेल भी बना रहेगा तो निश्चित ही पर चीन को नागवार ही गुजरेगा। क्वाड के चारों नेताओं की बातचीत के बाद क्लिमिंग्टन घोषणापत्र जारी किया गया। इसमें वैश्विक स्वास्थ्य और स्वास्थ्य सुरक्षा, कृषि शोध, साइबर सुरक्षा, अंतरिक्ष, बुनियादी ढांचा, इंडो-पैसिफिक लॉजिस्टिक्स नेटवर्क, महत्त्वपूर्ण और उभरती तकनीक, तटरक्षक सहयोग, अंडरसी केबल और डिजिटल कनेक्टिविटी, इंडो- पैसिफिक में प्रशिक्षण के लिए समुद्री पहल, संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद में सुधार आदि पर भी अपने भावी सहयोग और मजबूत करने की प्रतिबद्धता व्यक्त की गई है। निश्चित तौर पर ये सभी पहलकदमियां क्वाड सहयोग की बढ़ती सार्वभौमिक प्रकृति को रेखांकित करती हैं।

क्वाड नेताओं ने 'इंडो-पैसिफिक में प्रशिक्षण के लिए समुद्री पहल की घोषणा की ताकि क्षेत्रीय साझेदारों को इंडो- पैसिफिक मैरीटाइम डोमेन अवेयरनेस और अन्य क्वाड पहलों के उपकरणों का प्रभावी ढंग से उपयोग करने में मदद मिल सके ताकि सर्वोत्तम प्रथाओं को साझा किया जा सके और नागरिक समुद्री सहयोग में समुद्री सुरक्षा को लेकर सुधार किया जा सके, अपने जल की निगरानी और सुरक्षा की जा सके, अपने कानूनों को लागू किया जा सके और गैर-कानूनी व्यवहार को रोका जा सके। इस प्रकार क्वाड में भारत की भागीदारी जहां चीन के विस्तारवादी मंसूबों पर लगाम लगा रही है, वहीं एक्ट ईस्ट पॉलिसी और पूर्वी एशियाई देशों के साथ घनिष्ठ संबंध बनाने में भी मददगार साबित हो रही है। अमेरिका, भारत, जापान तथा ऑस्ट्रेलिया ट्रीटी के अलायंस पार्टनर्स हैं, लेकिन भारत की दिलचस्पी औपचारिक अलायंस में नहीं रही है। इसके बावजूद क्वाड हिन्द-प्रशांत क्षेत्र को स्वतंत्र और सबके लिए खुला बनाए रखने और इस क्षेत्र के लिए समावेशी रूप के साझा लक्ष्यों को लेकर जिस प्रकार आगे बढ़ रहा है, और चार वर्ष पहले बने इस संगठन ने अब तक जिस प्रकार से सफलतापूर्वक छह शिखर सम्मेलन आयोजित कर लिए हैं, उससे इस संगठन की प्रासंगिकता निकट भविष्य में और बढ़ेगी और दक्षिण प्रशांत, हिन्द महासागर और दक्षिण पूर्व एशिया में चीन की हरकतों से परेशान देश भी इसमें जुड़ते जाएंगे। गौरतलब है कि भारत जहां 2025 में 7 वें क्वाड शिखर सम्मेलन की मेजबानी करेगा वहीं अमेरिका 2025 में विदेश मंत्रियों की बैठक की मेजबानी करेगा।